www.researchvidyapith.com ISSN (Online): 3048-7331

Research Vidyapith International Multidisciplinary Journal

(International Open Access, Peer-reviewed & Refereed Journal)

(Multidisciplinary, Monthly, Multilanguage)

*** Vol-2* *Issue-6* *June 2025***

पण्हवागरणाइंसुत्त (प्रश्नव्याकरण सूत्र) के दार्शनिक अध्ययन के अन्तर्गत अपरिग्रह

प्रियंका कुमारी

शोध छात्रा, स्नातकोत्तर प्राकृत एवं जैनशास्त्र विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार

डॉ0 दुधनाथ चौधरी

शोध निर्देशक एवं अध्यक्ष, स्नातकोत्तर प्राकृत एवं जैनशास्त्र विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार

अपरिग्रह हमें जीवनमुक्त होने का सन्देश देता है। जीवन के लिए संग्रह या अर्थार्जन परिग्रह नहीं, अपितु उसपर स्वामित्व का भाव परिग्रह है। जनसमुदाय परिग्रह नहीं, अपितु जनसमुदाय में पनपनेवाला साम्प्रदायिक भावना परिग्रह है। विचारों का वैविध्य और बाहुल्य परिग्रह नहीं, अपितु अपने विचरों के प्रति हठाग्रह ही परिग्रह है। सच पूछिए तो, परिग्रह और अपरिग्रह जीवन और समाज के प्रति एक दृष्टिकोण है। जीवन और संसार के प्रति आसक्ति परिग्रह है, तो अनासक्ति अपरिग्रह। जब हम एक ओर संसार के पौद्गलिक तथा उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य स्वभाववाले विनाशी पदार्थों, यहाँ तक कि शरीर पर विचार करते हैं और दूसरी ओर इससे भिन्न चेतन तत्त्व पर, जो अविनाशी, नित्य और स्वाधीन है, चिन्तन करते हैं, तब क्रमशः परिग्रह–भाव से विमुक्ति होती जाती है और अन्तर्मन में अपरिग्रह–भाव विकसित होता जाता है। परन्तु, यह विकास–भाव या इस दृष्टि का विकास आत्मप्रशिक्षण और आत्मपर्यवेक्षण से ही सम्भव है, जो श्रुतज्ञान और आत्मचिन्तन की तीव्रता में उपलब्ध हो सकता है। जिसके हृदय में अपरिग्रह–भाव का विकास हो जाता है, वह जीवनमुक्त हो जाता है। जीवन्मुक्त व्यक्ति का शरीर भोग के लिए नहीं होता, वरन् यह दूसरों की सेवा में उपयोग करने के लिए होता है। अपरिग्रह सिर्फ अर्थ–स्वामित्व के परित्याग का आदेश नहीं देता, वरन् शरीर–मोह के त्याग का भी निर्देश करता है। अर्थ के साथ ही शरीर भी संसार की सेवा के लिए है, ऐसा समझकर इसे मानव–कल्याण में निष्काम भाव से समर्पित कर देना चाहिए। अपरिग्रह–भावना आज के युग में समसामयिक अनिवार्यता है। सभी धर्मों और दर्शनों में अपरिग्रह–वृत्ति को सच्ची शान्ति और अखण्ड आनन्द के मूल कारण के रूप में स्वीकार किया गया है। अपरिग्रह–भाव से मानव–समाज में शोषण की प्रवृत्ति रुकती है और संरक्षण की भावना की वृद्धि होती है। वर्त्तमान समय में निम्न–मध्यम वर्ग की स्थिति अतिशय चिन्तनीय है। फिर भी, यह वर्ग सामाजिक रूढ़ियों और धार्मिक आडम्बरों से ग्रस्त है। उच्च वर्ग के साथ प्रभुता–प्रदर्शन की प्रतिद्वन्द्विता में भी यह पश्चात्पद नहीं रहना चाहता, फलतः यह वर्ग अधिक कष्ट–पूर्ण जीवन झेलने को विवश होता है। अतएव, अपरिग्रह की शिक्षा इस वर्ग के लिए अधिक आवश्यक है। अपरिग्रह–भावना को अंगीकार किये बिना यह वर्ग न तो संरक्षित हो पायेगा, न ही इसे शोषण से मुक्ति मिलेगी। गृहस्थ–जीवन में भी अपरिग्रह नितान्त आवश्यक है। गृहस्थ–जीवन में अपरिग्रह के बिना आय और व्यय का कोई प्रावधान न हो, तो गृहस्थ–जीवन की व्यवस्था ही लड़खड़ा जायेगी। इसी प्रकार, यदि केवल व्यय ही होता रहे और आय का कोई स्रोत न हो, तो भी गृहस्थ–जीवन दीन–हीन तथा श्रीहीन हो जायगा।[1] अतः, आय और व्यय में सन्तुलन व्यवस्थित जीवन के लिए अनिवार्य है। आय के अनुपात में व्यय और व्यय के अनुपात में आय की प्रक्रिया जब व्यवस्थित बनी रहती है, जब जीवन एक सार्थक जीवन बन जाता है। इसी सिद्धान्त को महान् नीतिज्ञ आचार्य हेमचन्द्र सूरि ने इस प्रकार अभिव्यक्ति दी हैः

'व्ययमायोचितं कुर्वन् वेषं वित्तानुसारतः।'[2]

अर्थात्, जो गृहस्थ आय के अनुकूल व्यय करता है और अपने वित्त के अनुसार रहन–सहन बनाये रखता है, वही सुखी होता है। पुरुषार्थ गृहस्थ–जीवन की मर्यादा–रक्षा के लिए आधार–स्तम्भ होता हे। जीवन में पुरुषार्थ चार–प्रकार के होते हैं– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। धर्म सबसे पहला पुरुषार्थ है और फिर क्रम से शेष तीन पुरुषार्थों का मूल्य है। सच कहा जाए तो धर्म ही शेष तीनों पुरुषार्थों का मूलभूत कारण है। इसका एक तात्पर्य यह भी है कि धर्मपूर्वक अर्थ और काम के उपभोग से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। धर्म का मुख्य साध्य मोक्ष है। अर्थ और काम तो उसके साधनमात्र हैं। धर्म इहलोक में भी जीवन के अभ्युदय और श्रेयस् का मूलाधार है। वैशेषिक दर्शन का पहला सूत्र है' 'यतोभ्युदयनिः श्रेयससिद्धिः स धर्मः'[3] अर्थात् जिससे जीवन में भौतिक और नैतिक विकास हो, वही धर्म है। धर्म के बाद ही जीवन में अर्थ का महत्त्व है। अर्थ से ही जीवन–व्यवहार चलता है और धर्म ही जीवन–रथ की मूल धुरी है। 'नीतिवाक्यामृत' के अर्थ–समुद्देश में आचार्य सोमदेव ने अर्थ को इस प्रकार परिभाषित किया है : 'यतः सर्वप्रयोजनसिद्धिः सोथेः।'[4] जिससे सभी प्रकार की आवश्यकता की पूर्त्ति होती है, वही अर्थ है। अर्थ की महत्ता को लक्ष्य करके ही स्वतन्त्र अर्थशास्त्र की रचना हुई। संसार के सब लोग अर्थ के ही वशीभूत हैंः 'अर्थस्य सर्वे वशाः।' इसलिए, आध्यात्मिक जगत् में जिस प्रकार धर्म का महत्वपूर्ण स्थान है, उसी प्रकार भौतिक जगत में अर्थ का अपेक्षित मूल्य है।

किन्तु अपरिग्रह–दृष्टि में, जीवन की सत्ता के लिए अर्थ की महत्ता तो है, फिर भी अर्थ ही सब कुछ नहीं है। वही अर्थ सार्थक है, जो धर्म से प्राप्त या न्यायोपार्जित हो। मर्यादानुसार प्राप्त धन ही जीवन को सुख और शान्ति दे सकता है। उक्त पुरुषार्थचतुष्टय में धर्म के बाद अर्थ के क्रम–विन्यास का अभिप्राय है : धर्म से अनुबन्धित अर्थ। धर्मरहित अर्थ अनर्थकारी होता है। यही अर्थ शंकराचार्यजी की 'अर्थो ह्यनर्थमूलं' उक्ति में अनुध्वन्ति है।

अर्थ के बाद 'काम' का क्रम यह संकेतित करता है कि अर्थ जब होगा, तभी काम की पूर्त्ति होगी। आचार्य सोमदेव के अनुसार, जिससे सर्वेनिद्रय की प्रसन्नता या सन्तुष्टि हो, वही काम हैः 'यतः सर्वेन्द्रियप्रीतिः स कामः।'5 वस्तुओं के उपभोग से प्राप्त तृप्ति से ही सर्वेन्द्रिय की प्रसन्नता सम्भव है। इससे स्पष्ट है कि 'अर्थ' के बिना 'काम' नहीं सध सकता। बिना अर्थ के मनुष्य अपनी इच्छा की पूर्ति नहीं कर सकता। नीतिज्ञों ने कहा है कि अर्थ धर्म के अनुकूल होना चाहिए और काम धर्म और अर्थ के अनुरूप। आचार्य सोमदेव ने कहा हैः 'धर्मार्थाविरोध ेन कामं सेवेत ततः सुखी स्यात्।'6 अर्थात् जो धर्म और अर्थ के विरोध न होने की स्थिति को ध्यान में रखकर काम का सेवन करता है, वह कभी जीवन में दुःखी नहीं होता, सदा सुखी बना रहता है। अन्तिम पुरुषार्थ मोक्ष है। यह उक्त तीनों पुरुषार्थों के माध्यम से प्राप्य अन्तिम स्थिति है। आचार्य भद्रबाहु ने कहा है : जो मोक्षाभिमुख होते हैं, उनके लिए धर्म, अर्थ और काम कभी विरोधी नहीं होते, बराबर सहयोगी बने रहते हैं, इसलिए जिनशासन में उनका निषेध नहीं है। मूल गाथा इस प्रकार है –

धम्मो अत्थो कामो भिन्नते पिंडिया पडिसक्का।
जिणवयणंमि तु तिन्ना असवत्ता य होंति नायव्वा।।[7]

कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' में और प्राचीन नीतिवाङ्मय में भी इस विषय का वर्णन मिलता है कि गृहस्थ सर्वप्रथम अपनी आय की न्याय्यता पर विचार करे कि वह कितना कमाता है और कैसे कमाता है। अन्यायोपार्जित धन का एक कण भी उसके न्यायोपार्जित धन में नहीं मिलना चाहिए, अन्यथा अम्लरस की एक बूँद जिस प्रकार घड़े भर दूध को फाड़ देती है, उसी प्रकार अन्यायोपार्जित धन के एक कण से समस्त न्यायोपार्जित धन दूषित हो जाता है। अपरिग्रह–नीति को मूल्य देते हुए गाँधीजी ने कहा है कि मनुष्य अर्थ की कमी के कारण उतना परेशान नहीं है, जितना आर्थिक अव्यवस्था के कारण। इसलिए यदि अपनी आमदनी के अनुसार व्यवस्था ठीक रखे, ठीक से बजट बनाकर चले, तो वह अनेक परेशानियों और फिजूलखर्चियों से बच सकता है। नीति कहती है कि आय से व्यय कम होना चाहिए और आय का एक भाग आकस्मिक स्थिति के लिए सुरक्षित रखना चाहिए – 'आपदर्थे धनं रक्षेत्।' गृहस्थ के लिए पूर्णतया अपरिग्रही होना सम्भव नहीं है। वह अंशतः ही अपरिग्रही हो सकता है। अपरिग्रह की दृष्टि से जैनशास्त्र में अर्थ–व्यवस्था के सन्दर्भ में अनासक्ति को अधिक मूल्य दिया गया है। अपरिग्रह–वृत्ति के उपायों में दो पद्धतियों का वर्णन मिलता हे। एक उपाय यह है कि व्यति अधिक धन–संग्रह होने पर उसे अपना न मानकर समाज का माने। जो कुछभी सजीव–निर्जीव या सचित्त–अचित्त पदार्थ उसके पास है, उसे वह समाज की धरोहर समझे, यहाँ तक कि अपने शरीर को भी समाज या राष्ट्र की सम्पत्ति माने और अपने को उन सब सामग्री का केवल 'ट्रस्टी' या संरक्षक के रूप में जाने। दूसरा उपाय यह है कि वह अपने समग्र

संचय को पराया धन माने और स्वयं को केवल उसका व्यवस्थापक या प्रबन्धक समझे। बाहर से समस्त प्रकार का प्रबन्ध करते हुए भी भीतर से वह निर्लिप्त बना रहे। परिग्रह के प्रति आसक्ति और अनासक्ति को हम इस मक्षिका–दृष्टान्त से समझें। एक मक्खी तो शक्कर की मक्खी होती है, जो जब चाहे शक्कर पर से उड़ जाती है। दूसरी, चासनी की मक्खी होती है। चासनी पर बैठनेवाली मक्खी चासनी में लिपटकर उड़ने में असमर्थ हो जाती है और उसी चासनी में फँसकर अपने प्राण गवाँ बैठती है। अपरिग्रह–वृत्ति का मनुष्य चासनी की मक्खी के समान होता है। वह अपने संचय के प्रति इतना ममत्व पालता है कि अपना सारा जीवन उसी में समाप्त कर देता है। अपरिग्रह–वृत्ति का मनुष्य सम्यक् दृष्टि से सम्पन्न होता है, इसलिए वह भौतिक साधनों में आकण्ठ मग्न होकर भी विकारग्रस्त नहीं होता। जैसे मालिक के बालक को स्तनपान करानेवाली धात्री माता उस बालक को अपना नहीं समझती, बराबर मालिक का ही समझती है। महावीर की यह क्रान्तिकारी अर्थ–व्यवस्था वर्त्तमान सन्दर्भ में जनसमाज को परिग्रह के ग्रह से त्राण देनेवाली सिद्ध हो सकती है, साथ ही उसके अशान्त और धनलुब्ध हृदय को सन्तोषामृत से तृप्त कर सकती है।

अपरिग्रह–वृत्ति में वस्तु को मूल्य न देकर व्यक्ति को महत्त्व दिया गया है। इ वस्तुओं की दासता वस्तुओं के सदुपयोग नहीं करने देती और न विवेक के प्रति आदर–भाव रहने देती है। विवेक का अनादर होते ही अविवेक की उत्पत्ति हो जाती है और अकर्त्तव्य का जन्म हो जाता है। अकर्त्तव्य ही परस्पर संघर्ष का कारण है। संघर्ष वे वस्तु और व्यक्ति दोनों का ही विनाश होता है। प्राकृतिक नियम के अनुसार वस्तुओं की उत्पत्ति व्यक्तियों के हितार्थ होती है। उन वस्तुओं का महत्त्व व्यक्तियों से अधिक कर देना मंगलमय विधान का हनन करना है और विधान का विरोध किसी के लिए भी कदापि हितकर सिद्ध नहीं होता। अतः, वस्तु से अधिक व्यक्ति को महत्त्व देना अनिवार्य है। वस्तु से विवेक–दृष्टि को अधिक महत्त्व देना अपरिग्रह का अन्तरंग धर्म है। इस तत्त्व की गम्भीर विवेचना करते हुए स्वामी शरणानन्दजी की वाग्वचैखरी इस प्रकार मुखरित हुई हैः वस्तुओं की दासता से रहित मानव न तो वस्तुओं का दुरुपयोग ही करता है और न वस्तुओं के आश्रय या आधार पर अपना महत्त्व मानता है; क्योंकि वस्तु–आश्रित होने में व्यक्ति का महत्त्व नहीं है। व्यक्ति का महत्त्व तो विवेकी होने में निहित है। इस दृष्टि से अविवेकियों की अपेक्षा विवेकी मानव को कहीं अधिक महत्व देना उचित है। इतना ही नहीं, अविवेकी मानव, मानव के वेष में अमानव है। अमानव को पशु कहना पशु की भी निन्दा करना है। पशु में विवेकी होने का दायित्व नहीं है, पर मानव–मात्र में विवेक जागृत है। इस कारण उसपर दायित्व है कि वह विवेकी का अनादर न करे अर्थात् प्रत्येक वर्ग, समाज तथा देश का वही मानव आदरणीय है, जो विवेकी है। अपरिग्रह भोगों के नियमन पर बल देता है। भोगों को सीमित करने का आदेश देता है। इसीलिए, 'उपासकदशासूत्र' के श्रमणोपासकों ने अपनी प्रचुर भोग–सामग्री को सीमित किया था। भोगों की विविधता और रसोलोलुपता जीवन का आदर्श नहीं, अपितु श्रमपूर्ण, सादा और स्वल्पसाधनयुक्त जीवन ही सच्चा जीवन है।

संदर्भ–

1. उपासक दशा– 1/7/13
2. द्वयाश्रय काव्य– आचार्य हेमचन्द्र– 43/12
3. वैशेषिक दर्शन– 1/1
4. नीतिवाक्यामृतं– 1/56
5. काम–समुद्देशः नीतिवाक्यामृत
6. वही
7. दशवैकालिकनिर्युक्तिः 262

Cite this Article-

'प्रियंका कुमारी, डॉ0 दुधनाथ चौधरी', 'पण्हवागरणाइंसुत्त (प्रष्नव्याकरण सूत्र) के दार्षनिक अध्ययन के अन्तर्गत अपरिग्रह', Research Vidyapith International Multidisciplinary Journal (RVIMJ), ISSN: 3048-7331 (Online), Volume:2, Issue:06, June 2025.

Journal URL- https://www.researchvidyapith.com/

DOI- 10.70650/rvimj.2025v2i60004

Published Date- 03 June 2025